



THE TIMES OF INDIA

Date: 30-09-26

Ratio Rationale

When it comes to percentages, don't be awed by the big ones, and don't dismiss the small ones

TOI Editorials

SC has spared class VI students the pain of 3-language policy this year. Reason: over 300 CBSE schools aren't ready. While govt argued 98.8% of 28,819 such schools have implemented the policy, SC rightly pointed out that, in this case, the remaining 1.2% represents a sizeable number. We wish all courts, and govt programmes and policies, were so sensitive to small groups. Because in a country the size of India, 1% can mean 15mn, which is more people than 60% of world's countries can muster individually. In fact, when it comes to people, we should be putting more policies to the 1% test. Is the school dropout rate over 1%? Is more than 1% of population undernourished? Are more than 1% of households without electricity? Then we can't sit easy.

Unfortunately – globally – percentages hide more than they reveal. That's down to our own inability to read and dissect them. India's defence exports have grown 25 times in 10 years. Big deal? The percentage change is impressive, thanks to a low base of 1,500cr in 2016-17. A carmaker's electric car sales grew 4864% y-o-y. Big deal? It sold just 61 units in the year-ago period. We forget that a percentage is only a comparison. Just as an elephant is huge relative to a sheep, but tiny relative to a blue whale, a percentage can be dressed up by its denominator.

In 1995, word spread in UK that a contraceptive doubled – 100% increase – the risk of thrombosis. Alarmed, many women dumped it, and 1996 saw 13,000 extra abortions. But the actual risk had merely increased from 1/7000 to 2/7000. A good thumb-rule for percentages, then, is not to be awed by the big ones, and not to dismiss the small ones. Which is what SC did by standing up for the 1.2%.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 30-09-26

Carbon Credits Need More Than a Nod

ET Editorials



Earlier this month, Britain recognised India's Carbon Credit Trading Scheme (CCTS) as a qualifying carbon-pricing mechanism under its Carbon Border Adjustment Mechanism (CBAM). India, thus, joins an established club of recognised carbon-pricing jurisdictions. The move lends international credibility to its market-based carbon-pricing system, even before its real-world functioning has been tested.

But inclusion in the scheme is no exemption from CBAM. When calculating the carbon levy at Britain's border, Indian exporters of aluminium, iron and steel, cement, and fertilisers will be able to

deduct their cost of complying with CCTS. Exporters of hydrogen, included in CBAM but not CCTS, will have to pay the full amount of the levy. The total CBAM levy will depend on the amount of embedded carbon in the product, and applicable price under the Indian domestic system. With the anticipated CCTS opening price of \$10 a tonne, relief for Indian exporters is relatively small. However, because Britain will offset compliance costs under CCTS, it could incentivise Indian industry to buy credits domestically and could help with decarbonisation.

The recognition, however, doesn't automatically strengthen India's efforts to achieve equivalence with existing or future carbon border adjustment mechanisms. It does, though, demonstrate the value of sustained technical engagement in addressing complex issues in a mutually beneficial manner. It should make India consider joining platforms like the Brazil-sponsored Open Coalition on Compliance Carbon Markets. Like the EU, Britain says CBAM is a climate measure. While the recognition addresses the issue of double taxation, it leaves questions about equity and retention of CBAM revenues unresolved.



दैनिक भास्कर

Date: 30-09-26

एआई की नकेल कसने पर सर्वसम्मति कैसे बनेगी?

संपादकीय

भारत सरीखे दर्जनों विकासशील देश- जो अमेरिका-चीन को देखते हुए एआई की दौड़ में अपनी गाड़ी कमाई लेकर कूद गए अब हतप्रभ यूएन में दो मशहूर एआई बाहुबलियों- एन्थ्रोपिक के ढारियो अमोदेई और ओपन एआई के सैम आल्टमैन ने एआई के खतरे देखते हुए दुनिया को आगाह किया है कि इसकी गति को थामें इन्हें एआई जांच के दौरान इसके स्वाक्त-आचरण के संकेत मिले थे यानी एआई मानव नियंत्रण के बाहर जा सकता है। ऑस्ट्रेलिया ने आरोप लगाया कि ओपनएआई ने सरकारी वेबसाइट हैक कर ली। दूसरी ओर भारत में इस दौड़ में

पिछड़ जाने के डर से आईआईटी सहित तमाम संस्थाओं में एआई ज्ञान का विस्तार किया गया। एआई इम्पैक्ट समिट में दुनिया की तमाम कंपनियों ने भारतीय उद्यमियों के साथ मिलकर करीब 17 लाख करोड़ के निवेश का संकल्प लिया, जिसमें अगले सात वर्षों में अकेले रिलायंस का हिस्सा आधे से ज्यादा है। सरकार ने नेशनल क्वांटम मिशन के मद में 43 संस्थाओं के लिए 7300 करोड़ का प्रावधान किया है। स्वयं एआई के विस्तार और शोध को धीमा करने की वकालत करने वाले अमोदेई, ऑल्टमैन और इलॉन मस्क ने वर्षों तक इसके विकास में पूंजी लगाई है। सवाल यह भी है कि क्या चीन जैसा देश विश्व समुदाय की चिंता में शरीक होकर इस गति को धीमा करेगा? अगर उसने ऐसा नहीं किया तो सबको डर रहेगा कि टेक्नोलॉजी में चीनी बादशाहत न कायम हो जाए। इन तमाम हालात में भारत के लिए आज ऊहापोह की स्थिति है।



दैनिक जागरण

Date: 30-09-26

महंगी दवाएं

संपादकीय



सुप्रीम कोर्ट को एक बार फिर बेहिसाब महंगी दवाओं पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करनी पड़ी। उसने कैंसर की दवा की दस गुना अधिक कीमत पर बिक्री को सामूहिक संहार करार दिया। इसके पहले उसने कैंसर की 27 सौ वाली दवा को 27 हजार रुपये में उपलब्ध होने को दिनदहाड़े डाली जाने वाली डकैती कहा था। वास्तव में इसे डकैती के अलावा और कुछ कहा भी नहीं जा सकता। गत

दिवस सुप्रीम कोर्ट ने यह भी कहा कि कारपोरेट अस्पताल किसी पर रहम नहीं कर रहे हैं। उसने केंद्र सरकार से इस पर ध्यान देने को भी कहा कि आखिर ये अस्पताल लोगों को अपने यहां से ही दवाएं खरीदने के लिए क्यों बाध्य कर रहे हैं? सुप्रीम कोर्ट की नाराजगी पर केंद्र सरकार की ओर से पेश सालिसिटर जनरल तुषार मेहता ने जिस तरह यह कहा कि इस मामले में संतुलित समाधान की जरूरत है, उससे ऐसा लगता है कि अभी तक इस बारे में कोई सोच-विचार ही नहीं किया गया। क्या हमारे नीति-नियंता अभी तक इससे अवगत नहीं थे कि किस तरह कुछ जीवन रक्षक दवाओं को भी अनाप-शनाप मूल्यों पर बेचा जा रहा है और इस मामले में निजी क्षेत्र के अस्पतालों पर तो कोई लगाम ही नहीं है? सुप्रीम कोर्ट ने यह सही कहा कि कारपोरेट अस्पताल कोई सेवा नहीं कर रहे हैं, बल्कि वे एक उद्योग की तरह काम कर रहे हैं। उन्हें मनमानी करने की छूट नहीं दी जा सकती, क्योंकि वे आयुष्मान भारत और अन्य सरकारी स्वास्थ्य योजनाओं के तहत भी लोगों का उपचार करते हैं। इसमें खर्च होने वाला धन आम जनता के टैक्स का पैसा होता है।

बेहतर हो कि सरकार मरीजों के हित को ध्यान में रखकर ऐसी कोई व्यवस्था बनाए, जिससे दवाओं के मनमाने दाम न वसूल किए जा सकें। यह ठीक है कि इस क्रम में अस्पतालों और फार्मा कंपनियों के हितों का भी ध्यान रखना होगा, क्योंकि नई दवाओं के शोध की भी अपनी एक कीमत होती है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि उन्हें मनमानी करने दी जाए। दुर्भाग्य से अभी मनमानी ही हो रही है। इसका कोई सुनिश्चित आधार ही नहीं कि फार्मा कंपनियां अपनी दवाओं के मूल्य का निर्धारण किस तरह करती हैं? एमआरपी की मौजूदा व्यवस्था को एक छलावे के अलावा और कुछ नहीं कहा जा सकता। समझना कठिन है कि जब दवाएं आवश्यक वस्तु अधिनियम के तहत आती हैं, तब फिर उन्हें मनचाहे मूल्य पर बेचने की अनुमति कैसे दी जा सकती है? प्रश्न यह भी है कि कारपोरेट अस्पताल जेनेरिक दवाओं का उपयोग क्यों नहीं करते? इसी तरह इस प्रश्न का भी उत्तर मिलना चाहिए कि दवाओं के मूल्यों के मामले में मुनाफे का कोई मानदंड क्यों नहीं बनाया जा सकता? एक ऐसे समय जब निजी अस्पतालों पर निर्भरता बढ़ रही है, तब दवाओं के मनमाने मूल्यों पर लगाम लगनी ही चाहिए।



Date: 30-09-26

अमेरिका की कूटनीति का

ब्रह्मदीप अलूने

अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की विदेश नीति में इन दिनों कूटनीति का एक ऐसा विरोधाभास दिखाई दे रहा है, जिसने पारंपरिक मित्रता और प्रतिद्वंद्विता की धारणाओं को उलट दिया है। चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग के अमेरिका पहुंचने पर ट्रंप स्वयं हवाई अड्डे पर उनका स्वागत करने पहुंचे, लाल कालीन बिछाया गया, सैन्य सम्मान दिया गया और वाइट हाउस में राजकीय समारोह तथा रात्रिभोज हुआ। जिस चीन को अमेरिका लंबे समय से अपना प्रमुख रणनीतिक प्रतिद्वंद्वी मानता रहा है, उसके नेता के लिए ऐसा आत्मीय और भव्य स्वागत निश्चित रूप से कूटनीति में बदलाव का बड़ा संकेत है। इसके समांतर अपने पारंपरिक साझेदारों के साथ व्यापार, शुल्क और रणनीतिक अपेक्षाओं को लेकर ट्रंप का रवैया अब अधिक कठोर दिखाई देता है।

अमेरिका के पारंपरिक मित्र देशों के साथ ट्रंप की नीति को देखें, तो विरोधाभास और स्पष्ट हो जाता है। कनाडा, अमेरिका का पड़ोसी होने के साथ-साथ नाटो का सहयोगी और उत्तर अमेरिकी सुरक्षा व्यवस्था में महत्वपूर्ण साझेदार है। दोनों देश उत्तर अमेरिकी एयरोस्पेस रक्षा कमान नाराड के माध्यम से महाद्वीपीय रक्षा में सहयोग करते हैं और उनके बीच दशकों से गहरे आर्थिक संबंध रहे हैं। इसके बावजूद ट्रंप प्रशासन के दौर में कनाडा पर भारी शुल्क लगाने, व्यापारिक दबाव बढ़ाने और उसकी संप्रभुता से जुड़े विवादास्पद बयानों ने द्विपक्षीय संबंधों में तनाव पैदा कर दिया है। यूरोप की बात की जाए, तो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बनी अटलांटिक सुरक्षा व्यवस्था

का आधार अमेरिका और यूरोपीय सहयोगियों की साझेदारी ही रही है। फिर भी ट्रंप ने नाटो सहयोगियों से रक्षा खर्च बढ़ाने की मांग को अत्यंत कठोर तरीके से उठाया और यूरोपीय देशों की अमेरिकी सुरक्षा पर निर्भरता को लेकर बार-बार सवाल उठाए। अमेरिका- ईरान युद्ध के दौरान ब्रिटेन, जर्मनी और अन्य यूरोपीय देशों की सैन्य भूमिका को लेकर भी ट्रंप की नाराजगी सार्वजनिक तौर पर सामने आई।

जापान अमेरिकी रणनीति का एक महत्वपूर्ण स्तंभ है हिंद-प्रशांत में चीन के बढ़ते प्रभाव को संतुलित करने के लिए अमेरिका-जापान सुरक्षा साझेदारी लंबे समय से अहम रही है। जापान 'क्वाड' और व्यापक हिंद-प्रशांत रणनीति में भी साझेदार है। इसके बावजूद ट्रंप ने शुल्क नीति के जरिए जापान सहित अमेरिकी मित्र देशों पर बार-बार नए व्यापार समझौतों के लिए दबाव बनाया। इसी तरह आस्ट्रेलिया भी अमेरिका का संधि सहयोगी और हिंद-प्रशांत सुरक्षा ढांचे का महत्वपूर्ण हिस्सा है 'आकस' जैसी व्यवस्था में दोनों देशों की रणनीतिक साझेदारी चीन से संबंधित क्षेत्रीय सुरक्षा समीकरणों के लिए अहम है। फिर भी ट्रंप की व्यापार नीति ने आस्ट्रेलिया और अन्य पारंपरिक सहयोगियों के साथ आर्थिक संबंधों में अनिश्चितता पैदा की है। कोरियाई प्रायद्वीप में उत्तर कोरिया के परमाणु और मिसाइल कार्यक्रमों से निपटने में अमेरिका-दक्षिण कोरिया सुरक्षा गठबंधन दशकों से केंद्रीय भूमिका निभाता रहा है। इसके बावजूद ट्रंप प्रशासन के दौरान दक्षिण कोरिया के साथ व्यापार, शुल्क और सुरक्षा- साझेदारी की लागत को लेकर तनाव पैदा हुआ है। पश्चिम एशिया संकट के दौरान भी ट्रंप ने दक्षिण कोरिया और जापान सहित सहयोगी देशों से अपेक्षित सैन्य सहयोग नहीं मिलने पर सार्वजनिक रूप से असंतोष व्यक्त किया था।

दूसरी ओर, अमेरिका के लिए चीन सबसे बड़ी रणनीतिक चुनौती रहा है। आर्थिक शक्ति, तकनीकी क्षमता, सैन्य विस्तार, कृत्रिम बुद्धिमान, ताइवान और हिंद-प्रशांत में बढ़ते प्रभाव के कारण वाशिंगटन और बेजिंग के बीच प्रतिस्पर्धा लगातार गहरी हुई है। एक ओर चीन को अमेरिकी शक्ति के सामने सबसे बड़ी चुनौती माना जाता है, दूसरी ओर उसी चीन के राष्ट्रपति के लिए वाशिंगटन में लाल कालीन बिछाया जाता है, भव्य स्वागत किया जाता है और ट्रंप व्यक्तिगत संबंधों तथा समझौते की भाषा बोलते दिखाई देते हैं जबकि कनाडा, यूरोप, जापान, भारत और दक्षिण कोरिया जैसे लंबे समय से अमेरिकी सुरक्षा ढांचे का हिस्सा रहे सहयोगियों के साथ शुल्क, व्यापार, रक्षा खर्च और रणनीतिक प्रतिबद्धताओं को लेकर दबाव एवं कठोर सौदेबाजी दिखाई देती है।

अमेरिका के इस बदलते दृष्टिकोण का सबसे ज्यादा प्रभाव हिंद-प्रशांत क्षेत्र पर पड़ सकता है। अमेरिका ने पिछले एक दशक में चीन के बढ़ते प्रभाव को संतुलित करने के लिए भारत, जापान और आस्ट्रेलिया के साथ 'क्वाड' को मजबूत किया है। भारत को हिंद-प्रशांत में अमेरिका का महत्वपूर्ण रणनीतिक साझेदार माना गया है और चीन के बढ़ते प्रभाव के संदर्भ में दोनों देशों के बीच रक्षा, प्रौद्योगिकी, समुद्री सुरक्षा और आपूर्ति तंत्र सहयोग लगातार बढ़ा है। ऐसे में वाशिंगटन में शी जिनपिंग का भव्य स्वागत और ट्रंप-जिनपिंग के बीच उच्चस्तरीय संवाद स्वाभाविक रूप से नई दिल्ली के लिए अहम घटनाक्रम है बड़े देशों के बीच संवाद और तनाव कम करने के प्रयास अंतरराष्ट्रीय राजनीति का सामान्य हिस्सा होता है। मगर अमेरिका और चीन के बीच यदि आर्थिक तथा रणनीतिक समझ बढ़ती है, तो हिंद-प्रशांत में भारत की भूमिका और क्वाड की प्राथमिकताओं पर उसका गहरा प्रभाव पड़

सकता है। अमेरिका-चीन संबंधों में स्थिरता आने पर चीन को संतुलित करने के लिए भारत की रणनीतिक उपयोगिता के बारे में अमेरिकी दृष्टिकोण में बदलाव आ सकता है।

पिछले कुछ वर्षों में अमेरिका और चीन के बीच बढ़ते तनाव तथा आपूर्ति तंत्र में बदलाव के कारण कंपनियों ने चीन से बाहर भी निवेश के विकल्प तलाशे। इसी से 'चाइना प्लस वन' जैसी रणनीतियों को बढ़ावा मिला और भारत वैश्विक विनिर्माण तथा आपूर्ति तंत्र के एक वैकल्पिक केंद्र के रूप में अपनी जगह बनाने की कोशिश की। अब यदि अमेरिका और चीन के बीच व्यापारिक तनाव कम होता है, तो चीन से बाहर निवेश करने की कंपनियों की जरूरत और इसके लिए मिलने वाले प्रोत्साहन कुछ हद तक कम हो सकते हैं। दूसरी ओर, भारत-अमेरिका संबंधों में अनिश्चितता लगातार बढ़ी है। दोनों देशों के बीच व्यापार समझौते की रूपरेखा पर सहमति के बीच हाल ही में रूसी तेल खरीद से जुड़े संभावित अमेरिकी शुल्कों ने दोनों देशों के बीच एक नया तनाव पैदा किया है। भारत ने अपनी ऊर्जा सुरक्षा को प्राथमिकता देते हुए इन प्रस्तावित शुल्कों के प्रभाव को लेकर चिंता जताई है।

ऐसे में ट्रंप-जिनपिंग की मुलाकात अमेरिकी रणनीति में संभावित बदलावों का संकेत है। यदि अमेरिका, चीन से प्रतिस्पर्धा के साथ-साथ सहयोग की नीति भी अपनाता है, तो भारत को भी अपनी विदेश नीति में किसी एक शक्ति पर अत्यधिक निर्भरता के स्थान पर रणनीतिक स्वायत्तता, बहुध्रुवीय संबंधों और अपने राष्ट्रीय हितों पर अधिक जोर देना होगा। भारत के लिए वाड महत्वपूर्ण रहेगा, पर इसके साथ रूस, यूरोप, जापान, आस्ट्रेलिया, पश्चिम एशिया और वैश्विक दक्षिण के साथ संबंधों का विस्तार भी समान रूप से अहम हो जाता है। किसी महाशक्ति की वास्तविक ताकत मात्र उसके हथियारों, अर्थव्यवस्था या तकनीक से निर्धारित नहीं होती। उसकी विश्वसनीयता भी उतनी ही अहम होती है। यदि मित्र देशों का अमेरिकी प्रतिबद्धताओं पर भरोसा कम होने लगे और प्रतिद्वंद्वी देश उसके स्थान पर अपनी वैकल्पिक व्यवस्था प्रस्तुत करने लगे, तो वैश्विक समीकरणों में बदलाव से इनकार नहीं किया जा सकता।

चुनाव आयोग की साख

संपादकीय

दुनिया के तमाम छोटे-बड़े लोकतंत्र भारतीय निर्वाचन आयोग को एक नजीर के रूप में देखते रहे हैं। इसकी पारदर्शिता और मतदाताओं व राजनीतिक दलों में स्वीकार्यता ने हमारे लोकतंत्र को दुनिया भर में प्रतिष्ठा दिलाई

है। ऐसे में, उसकी कार्यशैली पर इतने गंभीर सवालों का खड़ा होना वाकई अफसोसनाक है। एक राष्ट्रीय दैनिक की खबर के बाद मौजूदा आयोग की कारकर्दगी को लेकर देश भर में संशय का जो माहौल बना है, उसे शनिवार को आयोग द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण और उसके द्वारा उठाए गए नए कदमों से शांत हो जाना चाहिए था, मगर मंगलवार को महाराष्ट्र के मुख्य चुनाव अधिकारी एस चोकलिंगम का एक पत्र सामने आया, जिसने ताजा विवाद को नया आयाम दे दिया। चोकलिंगम ने मुख्य निर्वाचन अधिकारी को लिखे अपने पत्र में मांग की कि स्थानीय निर्वाचक पंजीकरण अधिकारी (ईआरओ) को अधिक अधिकार-संपन्न बनाया जाए। इसके लिए उन्होंने 'ईसीआईनेट' में चार बदलावों की मांग की है, ताकि ईआरओ अपने स्तर पर फैसले ले सकें, न कि केंद्रीय स्तर पर निर्णय हो। हाल में जो विवाद खड़ा हुआ है, उसके मूल में एक बिंदु यह भी था कि दोनों चुनाव आयुक्तों ने कथित तौर पर ईआरओ के अधिकारों में कटौती पर अपनी असहमति जताई थी, मगर मुख्य चुनाव आयुक्त ने उनको नजरअंदाज कर दिया था।

शनिवार को चुनाव आयोग ने जिन नौ कदमों की घोषणा की, उनमें एक घोषणा यह है कि हर बैठक का एजेंडा पहले सदस्यों को दिया जाएगा। तो क्या अब तक बिना एजेंडे के आयोग की बैठकें हुआ करती थीं? एक अन्य निर्णय यह है कि बैठक में लिए गए फैसलों के रिकॉर्ड और मिनट्स सुरक्षित रखे जाएंगे। यह तो किसी भी सांविधानिक संस्था की बैठक का बुनियादी उसूल होता है, होना ही चाहिए। ऐसे में, आयोग की बैठकों को लेकर सवाल उठने लाजिमी हैं। आयोग ने अपने नौ निर्णयों में भी चोकलिंगम की स्पष्ट मांगों को लेकर बहुत साफ-साफ कुछ नहीं बताया, अलबत्ता उसने ईसीआईनेट की समीक्षा और जरूरत के मुताबिक अधिकारियों को सहूलियत देने की बात जरूर कही है। ऐसे में, एक बार फिर सवाल उठता है कि आयोग पारदर्शिता को अपनी सबसे पहली शर्त कब बनाएगा? चोकलिंगम की चिंता बेवजह नहीं है। महाराष्ट्र में जारी मसौदा सूची में लगभग 21 फीसदी मतदाता वोटर लिस्ट से बाहर हो गए हैं। आखिर करोड़ों नागरिकों से तकनीकी कारणों से मतदान का अधिकार छीनने के कदम को कैसे जायज ठहराया जाएगा? पश्चिम बंगाल में ट्रिब्यूनल द्वारा निपटाए गए फैसले देश के सामने हैं।

एसआईआर से जुड़े विवाद के खड़ा होने के बहुत पहले से विपक्षी दल आयोग की कार्यशैली पर आपत्ति जता रहे थे। खासकर हरियाणा व महाराष्ट्र विधानसभा चुनावों में मतदान के कई दिनों बाद मत प्रतिशत में बढ़ोतरी देखी गई, उससे कई राजनीतिक विश्लेषक भी चौंके, मगर आम धारणा यही थी कि लगातार हार से हताश विपक्ष बेजा ही आयोग के कामकाज को निशाना बना रहा है। हालांकि, कई दलों के विभाजन के बाद उसने जिस तरह से चुनाव-चिह्न और नामों को मान्यता दी, उसने भी उसकी छवि को धक्का पहुंचाया। अब आयोग के भीतर से ही आवाजें उठ रही हैं, तो विपक्ष के आरोपों और सियासत को धार मिलना लाजिमी है। आज 'इंडिया' ब्लॉक की नई दिल्ली में होने वाली बैठक के बाद आयोग के लिए समस्याएं बढ़ सकती हैं। ऐसे में, चुनाव आयोग को अपनी साख मजबूत करने के लिए अधिक ठोस कदम उठाने होंगे।